International Conference on Social Science & Humanities Trends
International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
April 2025
ISSN: 2584-2455

हिंदी आलोचना के विविध रूप और विकास

डॉ अनीता सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
गिन्दो देवी महिला महाविद्यालय बदायूं
पिन कोड 243601

शोध सार
हिंदी की विभिन्न विधाओं की तरह आलोचना का विकास भी प्रमुख रूप से आधुनिक काल की देन है।किसी भी साहित्य के आलोचना के विकास की दो प्रमुख शर्तें हैं- पहली कि आलोचना रचनात्मक साहित्य से जुड़ती हो और दूसरी कि वह समकालीन साहित्य से जुडती हो।हिंदी आलोचना अपने प्रस्थान बिंदु से ही इन दोनों कसौटियों पर खरी उतरती है।आधुनिक काल से पहले आलोचना का स्वरुप प्रमुखतया संस्कृत काव्यशास्त्र की पुनरावृति हुआ करती थी।लेकिन आज जो हिंदी आलोचना का स्वरुप है उसका आरम्भ आधुनिक हिंदी साहित्य के साथ या यों कहा जाय कि साहित्य में आधुनिक दृष्टि के साथ ही साथ हुआ है| हिंदी आलोचना संस्कृत के काव्यशास्त्रीय चिंतन की पृष्ठभूमि को स्वीकार करते हुए नवीन सृजन, नवीन विचारधाराओं और नवीन सामाजिक सरोकारों से टकराते हुए विविध दृष्टियों, प्रतिमानों और प्रवृतियों से युक्त होती चलती है।

1. हिंदी आलोचना: स्वरूप और संकल्पना

संस्कृत काव्यशास्त्र की पुनरावृति होने के कारण रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय विवेचन में न तो सूक्ष्म विश्लेषण और पर्यालोचन था और न ही मौलिकता ही थी।इसमें काव्यशास्त्रीय रस तो विद्यमान था लेकिन सामाजिक संदर्भो में उभरते हुए जीवन काव्य का रस नहीं।कुल मिलाकर हिंदी आलोचना का विकास साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी के विकास के सामानांतर हुआ है।आधुनिक गद्य साहित्य के साथ ही हिंदी आलोचना का उदय भी भारतेंदु युग में हुआ। जिस प्रकार देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं एवं विषमता बोध से लगाव के कारण इस काल का साहित्य विकसित हुआ उसी प्रकार आलोचना का भी संबंध यथार्थ बोध से हुआ और यह प्रतीत होने लगा कि रस किसी छंद में नहीं है बल्कि मानवीय संवेदना के विस्तार में है।हिंदी आलोचना की संकल्पना के सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है, जिसकी ओर विश्वनाथ त्रिपाठी ने संकेत किया है, कि "हिंदी आलोचना पाश्चात्य की नक़ल पर नहीं, बल्कि अपने साहित्य को समझने-बूझने और उसकी उपादेयता पर विचार करने की आवश्यता के कारण जन्मी और विकसित हुई|" यही कारण है कि हिंदी आलोचना, रचनाशीलता की समानधर्मी रही है।हिंदी साहित्य की मुक्तिकामी चेतना के अनुकूल हिंदी आलोचना भी संस्कृत काव्यशास्त्र की आधार-भूमि से जुड़कर भी स्वाभाविक रूप से रीतिवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, कलावाद और अभिजात्यवाद विरोधी और स्वच्छंदताकामी रही है।इसके साथ ही हिंदी आलोचना संस्कृत के शास्त्र सम्मत स्वरूप से इत्तर रचना को केंद्र में स्थापित करती है।रचना और आलोचना की समानधर्मिता या समांतरता को डॉ राम विलास शर्मा के इस मंतव्य से समझा जा

सकता है कि जो काम निराला ने काव्य में और प्रेमचंद ने उपन्यासों के माध्यम से किया वही काम आचार्य शुक्ल ने आलोचना के माध्यम से किया।हिंदी आलोचना और रचना के गहरे संबंध का सुखद परिणाम यह होता है कि आलोचना या आलोचक अपने विवेचन या मूल्यांकन का परिष्कार रचना के बीच से करते है न कि शास्त्रवाद के साये में।यहीं प्रवृति हम नयी कविता के दौर में भी देखते है, जहाँ रचनाओं के मूल्यांकन की प्रक्रिया में हिंदी आलोचना में कुछ अवधारणात्मक शब्द जैसे आधुनिकता, प्रयोगशीलता, प्रगतिशीलता, प्रतिबद्धता, भोग हुआ यथार्थ, लघु मानव, अनुभूति की प्रमाणिकता, अद्वितीय क्षण, व्यक्ति सत्य, मानव मूल्य, विसंगति, विडंबना, तनाव, ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान, सचेतनता, व्यापकता और गहराई, ईमानदारी समझदारी, बिम्ब और सपाटबयानी विकसित होते गए है।जब नयी कविता और उसके बाद की कविता में अर्थ की परत सघनतर होती है, अभिव्यक्ति सूक्ष्मतर होती जाती है तो आलोचना भी व्याख्या और निर्णय से आगे बढ़कर रचना के अर्थ-संवर्द्धन को अपना दायित्व मानती है।संक्षेप में और आचार्य शुक्ल के शब्दों को उधार लेकर कहा जा सकता है हिंदी आलोचना अपने स्वरूप और संकल्पना में 'साहित्येतर' और 'उपयोगिता' कसौटी को स्वीकार नहीं करती है।

2. हिंदी आलोचना का विकास क्रम

हिंदी आलोचना का इतिहास रीतिकाल से थोड़ा पहले शुरू होता है।ऐसा माना जाता है कि 'हिततरंगिणी' के लेखक कृपाराम हिंदी के पहले काव्यशास्त्री थे।लेकिन हिन्दी में 'काव्य रीति' का सम्यक समावेश सबसे पहले आचार्य केशव ने ही किया, जिसका अनुकरण परवर्ती रीतिकालीन आचार्यों और लक्षणकारों ने किया।हिंदी में वार्ता-ग्रंथों, भक्तमालों और उनके टीका-ग्रंथों के रूप में आलोचना की जो प्राचीन परंपरा मिलती है, वह निःसंदेह हिंदी आलोचना का प्रवेश द्वार है।लेकिन आचार्यत्व और कवित्व के एकीकरण के इस दौर में आलोचना लक्षण, उदाहरण और टीकाओं तक ही सीमित थी।हिंदी आलोचना के विकास को हम निम्न अवस्थाओं के अंतर्गत देख सकते हैं:-

➢ भारतेंदु युग

भारतेंदु काल में जैसे ही साहित्य रीतिकालीन अन्तःपुर के लीला-विनोद से निकलकर जन-समूह के ह्रदय के जन-पथ पर अग्रसर हुआ, हिंदी आलोचना भी अपने युगीन साहित्य को समझने और उसकी उपादेयता पर विचार करने की आवश्यकता के अनुरूप रीतिकालीन केंचुल को उतार कर एक नए चाल में ढल गई।इस युग के प्रमुख रचनाकार बालकृष्ण भट्ट के "साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है" सूत्र से साहित्य को परिभाषित किया तो हिंदी आलोचना भी उसके साथ होकर जन समूह की भावनाओं की सारथी बन गई।इस काल में आलोचना पत्र-पत्रिकाओं के लेखों, टिप्पणियों और निबंधों से विकसित हुई है।'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'भारत मित्र', 'सार सुधानिधि', 'ब्राह्मण', और 'आनंद कादंबिनी' जैसी पत्रिकाओं के लेखों में साहित्य और देश की समस्याओं पर सोचने-विचारने और समाधान निकालने की प्रक्रिया में इस युग की आलोचना दृष्टि विकसित हुई। इस युग में यदि नाटक प्रमुख साहित्यिक विधा थी तो आलोचना का प्रारंभ भी ' नाटक' के स्वरूप पर सैद्धांतिक

विवेचन से हुआ| भारतेंदु ने अपने 'नाटक' विषयक लेख में नाटकों की प्रकृति, समसामयिक जनरुचि और प्राचीन नाट्यशास्त्र की प्रासंगिकता पर विचार किया | इसलिए भारतेंदु को हिंदी साहित्य का प्रथम आलोचक माना जा सकता है |

भारतेंदु के कार्य को बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' और बालकृष्ण भट्ट ने आगे बढाया | इस युग में किसी सम्पूर्ण कृति के गुण-दोषों की समीक्षा की शुरुआत 'प्रेमघन' और बालकृष्ण भट्ट के द्वारा की गई | प्रेमघन जी ने 'आनंद कादम्बिनी' के एक अंक में बाणभट्ट की 'कादंबरी' की प्रशंसात्मक आलोचना की और एक अन्य लेख में बाबू गदाधर सिंह द्वारा 'बंग-विजेता' नामक बांग्ला उपन्यास के हिंदी अनुवाद की आलोचना करते हुए उपन्यास के अंतरंग-बहिरंग दोनों पक्षों पर विचार किया है | प्रेमघन जी ने 'आनंद कादम्बिनी' में ही लाला श्री निवासदास कृत नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की समालोचना की | 'संयोगिता स्वयंवर' की समालोचना बालकृष्ण भट्ट ने भी 'सच्ची समालोचना' शीर्षक से 'हिंदी प्रदीप' में की | भट्ट जी ने ऐतिहासिक आख्यानों के साहित्यिक उपयोग, देशकाल, पात्रों की स्वाभाविकता और रचना की जीवंतता के आधार पर आलोचना की |

- **द्विवेदी युग**

भारतेंदु के बाद हिंदी आलोचना ही नहीं, सम्पूर्ण हिंदी साहित्य पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का सबसे अधिक प्रभाव रहा | आचार्य द्विवेदी हिंदी के प्रथम लोकवादी आचार्य थे और युग-बोध एवं नवीनता के पोषक थे | भारतेंदु से प्रवर्तित हुई हिंदी आलोचना में वैज्ञानिकता की परंपरा को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू श्यामसुन्दरदास ने नवीन ज्ञान-विज्ञान के आलोक में विकसित किया | आचार्य द्विवेदी ने जहाँ 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन के द्वारा आलोचना की भाषा का रूप सुस्थिर किया, वहीं बाबू श्यामसुन्दरदास ने आलोचना के आवश्यक उपादान एकत्र किये, उन्हें व्यवस्थित और संयोजित किया | द्विवेदी युग में सैद्धांतिक और परिचयात्मक आलोचना के साथ-साथ तुलनात्मक, मूल्यांकनपरक, अन्वेषण और व्याख्यात्मक आलोचना की भी शुरुआत हुई| आचार्य द्विवेदी ने साहित्य को "ज्ञान राशि के संचित कोष" के रूप में परिभाषित करते हुए ज्ञान की साधना पर विशेष बल दिया, जिसका रचनात्मक उपयोग साहित्य में तो हुआ ही, आलोचना में भी उपयोग किया गया | आचार्य द्विवेदी के 'कवि और कविता' और 'कविता तथा कवि-कर्तव्य' निबंधो में उनकी काव्य विषयक धारणाएं दृष्टिगत होती है | वे यथार्थ को काव्य के लिए आवश्यक मानते है | द्विवेदी जी काव्य-भाषा के लिए अलंकारिता के विरुद्ध सहज, सरल और जन-साधारण की भाषा का समर्थन करते है और बोलचाल की हिंदी भाषा को आधुनिक साहित्य की भाषा घोषित किया |

द्विवेदी युग के अन्य प्रमुख आलोचक मिश्र बंधु, पं. पद्म सिंह शर्मा तथा पं. कृष्ण बिहारी मिश्र है | मिश्र बंधुओं को तुलनात्मक आलोचना का पुरस्कर्ता माना जाता है | उनके ' हिंदी नवरत्न' में नवरत्नों का चयन ही कवियों की परस्पर तुलना के द्वारा किया गया था | इन आलोचकों के बीच 'बिहारी और देव' में कौन श्रेष्ठ है, को लेकर कई चरणों में तुलनात्मक आलोचनाएं लिखी गईं| लेकिन मिश्र बंधुओं की दृष्टि रीतिकालीन संस्कारों से मुक्त नहीं पायी थी | कुलमिलाकर द्विवेदी युगीन आलोचना इतिवृतात्मक और गुण-दोष कथन तक की सीमित रही |

- **अध्यापकीय आलोचना**

अध्यापकीय आलोचना की शुरुआत भी द्विवेदी युग की ही देन है।विश्वविद्यालयों में कई शिक्षक अध्यापन के लिए आलोचनात्मक पुस्तक की कमी को पूरा करने के लिए इस दिशा में अग्रसर हुए।इन अध्यापकों में बाबू श्यामसुन्दरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्थान अग्रणी है।बाबू श्यामसुंदरदास ने एम.ए. के पाठ्यक्रम के लिए 'साहित्यालोचन','रूपक-रहस्य' और 'भाषा-रहस्य' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा।हिंदी आलोचना को आधुनिक और गंभीर साहित्यांग के रूप में विकसित करने का प्रयास करने वाला 'साहित्यालोचन' संभवतः प्रथम ग्रन्थ है।बाबू श्यामसुंदरदास शोधपरक आलोचना का भी विशिष्ट उदाहरण है।

- **शुक्ल युग**

हिंदी आलोचना को आलोचना शास्त्र के रूप में व्यवस्थित, गाम्भीर्य और समृद्ध करने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है।आचार्य शुक्ल ने सैद्धांतिक आलोचना को भारतीय साहित्य चिंतन परम्परा और पाश्चात्य साहित्य परम्परा के समन्वय से समृद्ध किया।उनकी आलोचना दृष्टि भारतेंदु युग की उसी सामाजिक-नैतिक चेतना से रूपाकार ग्रहण करती है, जिसका विकास रीतिवाद विरोधी अभियान के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी में दिखाई पड़ता है।आचार्य शुक्ल ने निजी पसंद-नापसंद पर आधारित आलोचना को ख़ारिज करके साहित्य के वस्तुवादी दृष्टिकोण का विकास किया।उन्होंने साहित्यिक आलोचना और इतिहास के लिए साहित्येतर और उपयोगितावादी मानदंडों को स्वीकार नहीं किया।उन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और 'चिंतामणि' के निबंधों के साथ ही सूरदास, जायसी और तुलसीदास के काव्य के व्यवस्थित मूल्यांकन की प्रक्रिया में कुछ बीज शब्द गढ़े, जो आलोचनात्मक प्रतिमान के रूप में स्थापित हुए।'कवि की अंतर्वृति का सूक्ष्म व्यवच्छेद', हृदय की मुक्तावस्था, 'आनंद की साधनावस्था', 'आनंद की सिद्धावस्था', 'लोक-सामान्य', 'साधारणीकरण', 'लोकमंगल' आदि प्रतिमानों की स्थापना साहित्यिक समीक्षाओं के आधार पर करते है।इसलिए उनकी सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना में संगति है।वे सूरदास को आनंद की सिद्धावस्था का कवि मानते है तो तुलसीदास को साधनावस्था का और जायसी के काव्य में 'प्रेम की पीर' की व्यंजना को महत्त्व देते है| शुक्ल जी छायावाद के आध्यात्मिक रहस्यवाद को काव्य के क्षेत्र के बाहर की चीज समझते थे।
आचार्य शुक्ल ने उपन्यासों और कहानियों पर भी विचार करते हुए लेखकों से व्यापक सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन के चित्रण करने का आग्रह किया है।उनके सहवर्ती आलोचकों में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कृष्ण शंकर शुक्ल, बाबू गुलाब राय, पदुमलाल पुन्नालाल बक्सी, आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय और रामदहिन मिश्र प्रमुख है जो अपनी अपनी तरह से शुक्ल जी की आलोचना दृष्टि का ही विस्तार कर रहे थे।

- **शुक्लोतर हिंदी आलोचना**

आचार्य शुक्ल हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष थे लेकिन शुक्लोतर हिंदी आलोचना का विकास शुक्ल जी मान्यताओं के साथ टकराहट के साथ शुरू हुआ।टकराहट का प्रमुख कारण था और टकराने वालों में छायावाद के प्रति सहानुभूति पूर्ण रुख रखने वाले रचनाकार और समीक्षक थे| शुक्ल जी के समकालीन कवियों में प्रसाद, पन्त और निराला प्रमुख थे जिन्होंने छायावादी काव्य रचना के साथ ही छायावाद के सन्दर्भ में शुक्ल जी मान्यताओं और प्राचीन शास्त्रवादी साहित्य मूल्यों का प्रतिवाद करते हुए छायावादी काव्यरचना को समझने के लिए एक दृष्टि प्रदान की।पन्त के 'पल्लव' को छायावादी आलोचना के नए प्रतिमानों का पहला घोषणापत्र कहा जाता है।इन कवि आलोचकों ने छायावादी साहित्य की काव्यभाषा, यथार्थ निरूपण, अर्थ मीमांसा, छंद मुक्ति, शिल्प-बोध आदि के एक नए साहित्य शास्त्र द्वारा काव्य बोध कराने का मार्ग प्रशस्त किया।पन्त का काव्यभाषा विश्लेषण निराला का छंद संबंधी विचार और महादेवी के गीत-विधा विवेचन का हिंदी आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान है।यही नहीं, निराला ने हिंदी आलोचना में पहली बार कविता के आवयविक सिद्धांत की व्याख्या की और प्रसाद ने हिंदी आलोचना को दार्शनिक धरातल प्रदान किया।
हिंदी अलोचना को जो प्रौढ़ता और सुव्यवस्था आचार्य शुक्ल ने प्रदान किया था, उसे आगे ले जाने का चुनौतीपूर्ण कार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ नगेन्द्र की महान त्रयी ने किया।ये तीनों अलग-अलग विषयों पर शुक्ल जी से टकराये भी।नन्द दुलारे वाजपेयी का शुक्ल जी से मतभेद केवल छायावादी काव्य को लेकर था और उनका हिन्दी आलोचना में सबसे महान योगदान छायावाद को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना है और उन्होंने सिद्ध किया छायावाद की मूल प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है| वाजपेयी जी काव्य-सौष्ठव को सर्वोपरि महत्त्व दिया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का शुक्ल जी मतभेद इतिहास-बोध को लेकर था। उन्होंने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में हिंदी साहित्य को एक समवेत, भारतीय चिंता के स्वाभाविक विकास के रूप में समझने का प्रयास और प्रस्ताव किया।काव्य-रूढियों और कवि-प्रसिद्धियों के माध्यम से काव्य के अध्ययन का प्रस्ताव भी हिंदी आलोचना को एक महत्वपूर्ण देन है।इस आधार पर ही द्विवेदी जी पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर विचार किया।साहित्य और जन जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण पूरीतरह से मानवतावादी था जो शुक्ल जी के लोकमंगलवाद से काफी दूर तक मेल खाता है।
डॉ नगेन्द्र ने फ्रायडीय प्रभाव के तहत मनोविश्लेषणात्मक व्याख्याएं की और शास्त्र विवेचन करते हुए भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सामानांतर सिद्धांतों की तुलना कर दोनों के बीच समान तत्वों की खोज की।
शुक्लोतर आलोचकों में डॉ देवराज का स्वर कुछ अलग था।उन्होंने शुक्ल जी के सूत्रों और कुछ नयी प्रवृतियों के आधार पर छायावाद की दुर्बलताओं की सोदाहरण व्याख्या करते हुए छायावाद के पतन की घोषणा कर दी और सांस्कृतिक-बोध को साहित्य के प्रतिमान के रूप में स्थापित किया।
शुक्लोतर आलोचना में अज्ञेय का भी अहम् योगदान है।उनकी भूमिकाओं (कवि-दृष्टि), निबंध ('त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'अद्यतन') और समग्र विवेचन ('संवत्सर') में

साहित्य ही नहीं, रचनात्मकता और सम्प्रेषण मात्र की विविध समस्याओं का गहरा और सुलझा हुआ विश्लेषण हुआ है ।

3. **प्रगतिवादी आलोचना**

शुक्लोतर युग में हिंदी आलोचना का विकास अनेक दिशाओं में हुआ ।इनमें प्रगतिवादी, मनोविश्लेषणवादी, दार्शनिक और शैली वैज्ञानिक आलोचना प्रवृतियाँ प्रमुख है ।प्रगतिवादी आलोचना का आधार मार्क्सवादी आलोचना थी ।शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव और नामवर सिंह प्रमुख प्रगतिवादी आलोचक रहे है ।रामविलास शर्मा ने हिंदी साहित्य को वैचारिक कठमुल्लेपन से बाहर निकाला और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य की पुनर्व्याख्या की ।आदि काव्य से लेकर समकालीन साहित्य हिंदी की ठेठ जातीय परम्परा को स्थापित किया ,जिसका प्रतिनिधि उन्होंने भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्वेदी, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल और निराला को माना है । लेकिन उन्होंने कोई नया सिद्धांत विवेचन नहीं किया ।अपने समकालीन मार्क्सवादी आलोचकों के आचार्य शुक्ल विरोधी दृष्टिकोण का प्रतिवाद करते हुए उन्होंने शुक्लजी की विरासत और लोकवादी परंपरा का विकास किया और कहा कि आचार्य शुक्ल ने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और कविता के मध्यम से प्रेमचंद और निराला ने ।शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त और रांगेय राघव ने मूलतः मार्क्सवादी सिद्धांतों का पक्ष-पोषण किया और उसे व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया ।मुक्तिबोध ने साहित्य के अध्ययन को अंततः मानव सत्ता के अध्ययन के रूप में स्वीकृति और रचना प्रक्रिया के विश्लेषण पर जोर देते हुए 'कामायनी' का पुनर्मूल्यांकन करते है ।नामवर सिंह के यहाँ मार्क्सवादी आलोचना का रचनात्मक और परिष्कृत रूप सामने आया ।नामवर सिंह से छायावादी काव्य के उपनिवेश विरोधी और रुढ़िवाद विरोधी चरित्र का उद्घाटन किया और काव्य के नए प्रतिमानों का प्रश्न 'कविता के नए प्रतिमान' में उठाया जिस पर पश्चिम की रूपवादी आलोचना का गहरा प्रभाव है ।मुक्तिबोध की रचनाओं पर गंभीर विवेचन भी सबसे पहले इसी पुस्तक में किया गया है ।नामवर सिंह के वाद विश्वंभर नाथ उपाध्याय, रमेश कुंतल मेघ, शिवकुमार मिश्र और मैनेजर पाण्डेय ने मार्क्सवादी सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में कुछ साफ-सुथरी व्यावहारिक आलोचना के विकास में अहम योगदान किया है ।

4. **नयी समीक्षा**

इस प्रगतिवादी आलोचना के समानांतर आलोचकों का एक समूह 'परिमल' से जुड़ा हुआ था, जिसका मुख्य केंद्र इलाहाबाद था|इस समूह के आलोचकों में धर्मवीर भारती, डॉ रघुवंश, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, राम स्वरुप चतुर्वेदी और जगदीश गुप्त प्रमुख थे ।राम स्वरुप चतुर्वेदी ने 'हिंदी नवलेखन', 'भाषा और संवेदना', 'कामायनी का पुनर्मूल्यांकन', 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या' में आचार्य शुक्ल के आलोचनात्मक प्रतिमानों और सूत्रों को ही नवीन भाषिक संवेदना और रचनाशीलता के सन्दर्भ में स्थापित करते है ।पचास के बाद हिंदी आलोचना पश्चिमुन्खता से भी प्रभावित हुई|इसके बावजूद इनमें अपने जातीय स्वरुप का आकर्षण बना रहा और अपने मूल की ओर लौटने की पुरजोर कवायद की जिसका असर नयी कविता के काव्य-भाषा के विकास में देखा जा सकता है ।

5. **आलोचना के बढ़ते आयाम**

छठे और सातवें दशक में हिंदी आलोचना कविता के आभा-मंडल से युक्त होते हुए भी कथा साहित्य, नाटक और अन्य विधाओं को लेकर स्वतंत्र आलोचनात्मक प्रतिमानों और सिद्धांतों की नवीन आधारभूमि की तलाश की ओर अग्रसर हुई और आज़ादी के साहित्य रचना और सामाजिक परिस्थितियों में हुए बदलाव को देखते हुए इसकी आवश्यकता महसूस की जा रही थी | इस दिशा में विजय देव नारायण साही की भूमिका प्रमुख है| आलोचकों के आलोचक के रूप में विख्यात साही ने तत्कालीन आलोचनात्मक विवादों में सजग हस्तक्षेप किया और न केवल पश्चिम और पूर्व के काव्यान्दोलनों के बुनियादी अंतर को रेखांकित किया | उन्होंने 'जायसी' में आग्रह किया कि जायसी को 'सूफ़ी' के बजाय 'कवि' के रूप में देखा जाना चाहिए | आधुनिक आलोचकों में साही के अलावा डॉ रघुवंश ऐसे आलोचक है जिन्होंने शमशेरबहादुर सिंह और विपिन कुमार अग्रवाल की समग्र समीक्षा करते हुए आधुनिक साहित्य के सैद्धांतिक पक्ष को स्पष्ट किया और प्राचीन काव्यशास्त्र की आधुनिक साहित्य से संगति स्थापित किया

6. **कथा समीक्षा के प्रति बढ़ता आग्रह**

आलोचना की नयी दिशा की तलाश में दूसरा महत्वपूर्ण नाम देवीशंकर अवस्थी का है, जिन्होंने अपने अल्प-जीवन में 'विवेक के रंग' और 'नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति' की भूमिकाओं में किसी भी कृति की समीक्षा 'मूल्य-साँचें' अर्थात् साहित्यिक मूल्यों के आधार पर करने का आग्रह किया | अवस्थी जी ने सबसे पहले कहानी की समीक्षा के लिए काव्य-प्रतिमानों को लागू करने के खतरों से आगाह करते हुए उनसे इत्तर कुछ आलोचनात्मक बीज शब्दों का संकेत किया | बाद में नामवर जी ने 'कहानी, नयी कहानी' में काव्य प्रतिमानों के आधार पर कथा समीक्षा की एक नयी सैद्धांतिकी विकसित करने की कोशिश की | उपन्यास आलोचना के प्रतिमानों और सूत्रों को व्यवस्थित करने में नेमिचंद जैन और डॉ गोपाल राय का प्रमुख योगदान रहा है | हिंदी उपन्यास की आलोचना में सबसे महत्पूर्ण योगदान नेमिचंद्र जैन और उनके 'अधूरे साक्षात्कार का है | इसमें उन्होंने हिंदी उपन्यास की मानवीय और कलात्मक सार्थकता की खोज की और अपने बहुस्तरीय अनुशीलन के द्वारा हिंदी उपन्यास के सामान्य स्वरूप और उसकी विविधता पर प्रकाश डाला |

नाट्य समीक्षा का बदलता स्वरुप:

इस दौर में नाट्य समीक्षा में नेमिचंद जैन द्वारा संपादित नाटक केंद्रित 'नटरंग' की अहम भूमिका रही है | आजादी के पहले से ही नाटक साहित्यिक विधा से रंगमंचीय विधा के रूप में परिवर्तित होने लगा था | रंगमंच के अनुकूल नाटक की भाषा के सवाल उठाने का श्रेय विपिन कुमार अग्रवाल को है |

समकालीन आलोचना का परिदृश्य

सातवें दशक के बाद की आलोचना में काफी वैविध्य है | लेकिन आलोचकों के अपने आग्रह, विचार और विविधता के बावजूद यह कोशिश दिखाई देती है कि अंतर्वस्तु और

रचना शिल्प की दृष्टि से एक समावेशी और समेकित आलोचना दृष्टि का विकास किया जा सके।इस दौर के आलोचकों में मलयज, बच्चन सिंह, निर्मला जैन, विश्वनाथ त्रिपाठी, परमानन्द श्रीवास्तव, नन्दकिशोर नवल, रमेश चन्द्र शाह, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, नंदकिशोर आचार्य, प्रभाकर श्रोतिय, अशोक वाजपेयी और मैनेजर पाण्डेय आदि प्रमुख है।इनमें से अधिकांश छायावाद को अपनी आलोचना का प्रस्थान बिंदु बनाकर समकालीन कविता की आलोचना में अग्रसर होते है।मलयज 'कविता से साक्षात्कार' में आलोच्य कृति के 'वास्तविक मूल्यांकन की कुंजी' उसी कृति के भीतर तलाश पर जोर देते है।वे आलोचना में 'निर्मम तटस्थता' को अनिवार्य शर्त मानते है और स्वयं निर्ममता से अनुपालन भी करते है।निर्मला जैन आलोचना के लिए अनुसंधान, पांडित्य, सिद्धांत-निरूपण और इतिहास आदि को आलोचना के लिए उपयोगी मानते हुए वे ठेठ आलोचना को इनसे अलगाने पर जोर देती है।वे वैचारिक आग्रहों से मुक्त रहते हुए छायावाद को 'स्वछंदता का स्वाभाविक पथ' घोषित करती है। उन्होंने 'कुरु-कुरु स्वाहा', 'जिंदगीनामा' और 'जहाज का पंछी' उपन्यासों के मूल्यांकन में वे उपन्यास की रचना-प्रक्रिया को समझने पर जोर देती है।विश्वनाथ त्रिपाठी एक ओर 'लोकवादी तुलसीदास' और 'मीरा का काव्य' में प्रगतिवादी आलोचना की एकांगिकता से बचाते हुए भक्तिकाव्य की लोकवादी-जनवादी मूल्य दृष्टि का अन्वेषण करते है तो दूसरी ओर 'देश के इस दौर में' परसाई की व्यंग्य दृष्टि की सार्थकता की खोज करते हुए उनके विचार-चित्रों की समानता मुक्तिबोध के काव्य-बिम्बों से स्थापित करते है। परमानन्द श्रीवास्तव मुख्यतः नई कविता के आलोचक है और वे कविता में सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भों और संरचना के स्तर पर आए बदलाव को सजगता से परखते हैं।रमेश चन्द्र शाह सर्जनात्मक समीक्षा पर जोर देते है और रचनाकार की सृजन प्रक्रिया का आत्मीय विश्लेषण आवश्यक मानते है।लेकिन उनकी आलोचना भाषा की दुरुहता उनकी आलोचना दृष्टि को बाधित करती है।मैनेजर पाण्डेय का आलोचनात्मक प्रखर है।उन्होंने यद्यपि आलोचना की कोई सैद्धांतिकी या पद्धति तो निर्मित नहीं की लेकिन उनके समीक्षात्मक लेखों और टिप्पणियों में एक ओर 'कला की स्वायत्तता' और 'आलोचना के जनतंत्र' जैसे मूल्य निरपेक्ष कलावादी मान्यताओं का विरोध करते है तो दूसरी ओर वे उत्तर आधुनिकतावादी और उत्तर संरचनावादी आलोचना दृष्टि और पद्धति का भी विरोध करते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1.शर्मा, रामविलास – हिंदी आलोचना का इतिहास
2.त्रिपाठी, चिन्तामणि – आलोचना: स्वरूप और विश्लेषण
3.भारद्वाज, भगवानदास – काव्यशास्त्र और हिंदी आलोचना
4.पराशर, रामविलास – आधुनिक हिंदी आलोचना के मुद्दे
5.सिंह, हरिशंकर – हिंदी साहित्य: रूप और रस
6.भारतीय काव्यशास्त्र (नाट्यशास्त्र), भास, भामहा एवं दण्डिन (प्राचीन ग्रंथ)
7.गुप्त, मोहनलाल – हिंदी आलोचना के आयाम